International Journal of Multidisciplinary Allied Research Review and Practices

IJMARRP ISSN No: 2455-1570 (Volume 3, Issue 6, June 2016)

शकुंतला : नवीन भारतीय समाज का वास्तविक दर्शन व कालिदास का सृजन

Dr. Rafik

Extension Assistant Professor

Department of Hindi-Govt.College Nagina-Mewat-Haryana

विषय वस्तु

भारतीय साहित्य ही नहीं, समूचे विश्व साहित्य के शिखरस्थ रचनाकारों में कालिदास का स्थान निर्विवाद और अप्रतिम है। वे भारतीय सांस्कृतिक धारा के अद्वितीय चितेरे हैं। पूरी परम्परा अनमें उतरी है और उनकी प्रतिभा के संस्पर्श से पुनः जीवित होकर प्रवाहित हुई है। यश, महिमा, विस्तार और ऊंचाई के साथ गहराई में कालिदास का साहित्य अपना सानी नहीं रखता।

महाकवि कालिदास का सृजन क्षेत्रा विस्तृत है। वे एक सफल महाकाव्यकार, सर्वोत्कृष्ट नाटककार और गीत काव्य–प्रणेता हैं। उनकी चहुमुखी प्रतिभा संस्कृत के अन्य कवियों की अपेक्षा उनके वैशिष्ट्य प्रतिपादन में विशेष सहायक है। कालिदास अपने सौंदर्य दर्शन, रस व्यंजना के बल पर संस्कृत के समस्त कवियों में अग्रणी हैं। हिन्दी में जहां सूरदास को सूर्य और तुलसीदास को चंद्र के सदृश्य बताया गया है, वहीं संस्कृत में हम कालिदास के लिए कह सकते हैं कि यह ब्रह्माण्ड है, जहां ये सब स्वतः ही विद्यमान हैं। महाकवि के साहित्य मे हमें सूर का श्रृंगार और तुलसी का आध्यात्म दोनों ही देखने को मिल जाता है। जो सृजनकर्ता है उसकी सृजन–प्रक्रिया के बीज हमें रचनाकार के साहित्य में स्फुट रूप से प्राप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार कालिदास का काव्य रचना–प्रक्रिया विषयक संज्ञान हमें उनके साहित्य में भी आसानी से प्राप्त हो जाता है। महाकवि कालिदास ने स्फुट रूप से अपने साहित्य में काव्य रचना –प्रक्रिया विषयक विचार व्यक्त किए हैं। उन्होंने अनुभूति के सूक्ष्म स्तर से लेकर, स्थूल स्तर पर शब्द के माध्यम से काव्य की अभिव्यक्ति के साथ–साथ, सृजन सामग्री की उपयोगिता तथा सृजित के सौंदर्यीकरण तक की चर्चा अपनी कृतियों के माध्यम से की है। **नवीन** भारतीय समाज में स्त्री सिर्फ सृजन सामग्री ही नहीं अपितु यह उनके राजनैतिक एवं वैचारिक संघर्ष का प्रतीक भी है। इन कविताओं में स्त्री की अनुभूतियां सहज रूप में अभिव्यक्त हुई है। इस अर्थ में ये व्यक्तिगत अभिव्यक्ति की कविताएँ हैं, दूसरी ओर स्त्री जीवन की सामाजिक अवस्था का इससे ज्ञान होता है।

प्रस्तावना

काव्य रचना–प्रक्रिया हो या अन्य कोई नवनिर्माण की प्रक्रिया, हमें हमेशा विधाता की सृष्टि सृजन–प्रक्रिया के समान ही होती है। कविता की रचना–प्रक्रिया एक दृष्टि से नवनिर्माणोन्मुखी कृत्य पक्ष से जुड़ी हुई प्रक्रिया है। जिसमें रचनाकार नित नवीन सृजन की ओर उन्मुख रहता है। महाकवि कालिदास ने अपनी सृजन–प्रक्रिया में वेदों का ही अनुसरण किया है क्योंकि वेदों में **"कवयः सन्ति वेधसः"**[1] के माध्यम से कवि के सृजन को विधाता के सृजन से सदृश्य माना है। कालिदास ने भी विधाता के सृजन के माध्यम से ही काव्य सृजन–प्रक्रिया को समझाया है। राजा दुष्यन्त के वक्तव्य के द्वारा काव्य रचना–प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए महाकवि का कथन है–

"चित्ते निवेश्य परिकल्पित सत्वयोगाद्
रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा म
धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः।।"[2]

राजा दुष्यन्त ने शकुंतला के अपूर्व सुन्दर रूप को देखा तो वह बोला कि एक ओर मैं शकुंतला के अद्‌भुत रूप को देखता हूं और दूसरी ओर विधाता की अद्‌भुत सृजन क्षमता को देखता हूं तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि शकुंतला को गढ़ने के लिए विधाता ने पूर्णतः समाहित होकर पहले उसे अपने चित्त में बिठाया होगा और फिर उसने ऐसा स्त्री रत्न बनाया होगा, जो पुराने चौदह रत्नों से भिन्न बन गया। महाकवि ने विधाताकृत शकुंतला के सृजन के माध्यम से काव्य सृजन–प्रक्रिया के विविध पक्षों की ओर संकेत किया है। इससे सबसे पहले यह बात स्पष्ट होती है कि कवि सर्वप्रथम प्रभाव ग्रहण करता है, वह सृष्टि में व्याप्त किसी आकर्षक वस्तु और उसके अद्वितीय सौंदर्य को देखकर द्रवीभूत हो उठता है और उससे प्रभावित होता है। तत्पश्चात् अनुभूति ग्रहण करता है। जब कवि प्रभाव ग्रहण कर लेता है

तब बात आती है, चित्त की एकाग्रता की जिसे कालिदास ने अपनी कविता के माध्यम से महत्त्वपूर्ण माना है।

नवीन भारतीय समाज में नारी **(शकुंतला)** को सदैव दोयम दर्जे पर रखा गया है। आज समय बहुत बदल गया है और नारी के प्रति हमारी मानसिकता भी बदली है परन्तु यह बदलाव अपेक्षित नहीं है। आज भी धड़ल्ले से कन्या भ्रूण हत्या होती है, जिसे रोकने के लिए सरकार ने कारागार का विधान किया है। आज भी दहेज लोभी असहाय नारी को आग की लपटों के हवाले कर देते हैं। आज भी नारी बलात्कार का शिकार होती है चाहे प्रतिशोधवश हो या वासनावश। आज भी विधवा नारी परिवार में सम्मानित नहीं होती। कालिदास के रेखाचित्रों में नारी जीवन की इन विडम्बनापरक स्थितियों को उजागर ही नहीं किया गया है ।

स्पष्ट है कि बाह्य जगत के भाव ही कवि भाव बनकर काव्य में अभिव्यक्त होते हैं। इसे स्पष्ट करते हुए कालिदास के बाद आचार्य भरत ने भी कहा है–

''योऽथोहृदयसंवादो तस्य भावः रसोदभवः।''[3]

अर्थात् कवि के हृदय के संवाद जब जगत् के बाह्य भावों से होता है तब रस की उत्पत्ति होती है और इसी रसानुभूति को कवि काव्य में अभिव्यक्ति का माध्यम बनाता है–

''कवेरन्तर्गतं भावं भावयन्भावमुच्यते।''[4]

यहां भावों की अनिवार्यता स्पष्ट परिलक्षित हो रही है। अतः कलाकृति के आकर्षण का मूल रहस्य भावाभिव्यक्ति ही है। अर्थात् माध्यम् अंगों का सौंदर्य उसमें योगदान करता है, पर कला की आत्मा भावानुप्रवेश ही है। कालिदास का कथन है–

''मधुरावस्थान दर्शनीयो भावानुप्रवेशः।''[5]

स्पष्ट है कि भावानुप्रवेश के अभाव में रचना असम्भव है।

अतः काव्य का सृजन एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें कवि की भावनाएं अपने अंतिम रूप में प्रतीयमान होकर व्यक्त होती हैं। वगैर भावों के, वगैर भावावेगों के रचना सम्भव ही नहीं है। हम कह सकते हैं कि सिसृक्षण (सृजन के क्षण) में कवि के अन्दर प्रबल भावों का आवेग विद्यमान होता है, वगैर आवेग के सृजन–प्रक्रिया शुरू ही नहीं हो सकती। काव्य सृजन–प्रक्रिया एक आवेग पूर्ण प्रक्रिया है।

काव्य सृजन–प्रक्रिया का एक और महत्त्वपूर्ण चरण जिसकी हमने शुरू में चर्चा की थी, वह है, भावानुभूति के माध्यम से लेखन काल में तल्लीनता। चित्त की एकाग्रता अथवा समाधिस्थावस्था काव्य सृजन–प्रक्रिया की अनिवार्य शर्त है।

महाकवि कालिदास ने काव्य रचना–प्रक्रिया में चित्त की एकाग्रता या समाधि को आवश्यक माना है। उपनिषदों के **''ध्यानमुपास्स्वेती''**[6] के आधार पर ध्यान का अनुसरण करके ही उन्होंने स्पष्ट किया है कि कवि समाधिस्थ या ध्यानमग्न होकर ही काव्य की रचना कर सकता है। शिथिल समाधि या चित्त की

एकाग्रता के बिना कविता में कवि के हृदय के वे भाव ही पूर्ण रूप से व्यक्त ही नहीं होंगे, जिन्हें वह व्यक्त करना चाह रहा है। समाधि की शिथिलता कला और कलाकार दोनों की असफलता है। उत्तम रचना समाधि के अभाव में असंभव है, इसे महाकवि अग्निमित्रा के वक्तव्य के माध्यम से स्पष्ट कर देते हैं–

"चित्रागतायामस्यां कान्तिविसंवादशंकि मे हृदयम्।
सम्प्रति शिथिलसमाधिं मन्ये येनेयमालिखिता।।"[7]

अग्निमित्रा ने कहीं मालविका का चित्रा देखा तथा चित्रा के सौन्दर्य को देखकर वह उससे प्रभावित हुआ। लेकिन जब उसने प्रत्यक्ष रूप से सजीव मालविका को देखा तो उसे चित्राकार की चित्राकारी पर शंका होने लगी और वह कहने लगा कि चित्राकार ने मालविका के चित्रा को वैसा नहीं बनाया है जैसे वह है, चित्राकार ने सावधानी से उसका चित्रा नहीं बनाया होगा। शिथिल समाधि होने के कारण वह उसे यथारूप चित्रित नहीं कर पाया। वगैर चित्त की एकाग्रता के या वगैर समाधिस्थ कवि रचना कर ही नहीं सकता। वह समाधिस्थ होकर अनुभूति को अपने हृदय में स्थापित करता है, उसे अपने चित्त में स्थान देता है और अन्ततः वाणी द्वारा शब्दों के माध्यम से वह उसे एक ऐसा रूप दे देता है, जिससे उस हृदयस्थ वस्तु का नवीन एवं विलक्षण स्वरूप हमारे सम्मुख उपस्थित होता है तथा उक्त स्वरूप का दर्शन पाकर हम लोग इस तरह आत्मविभोर हो जाते हैं जैसे कालिदास का दुष्यन्त विधाता की रचना शकुंतला को देखकर।

नवीन भारतीय समाज सदैव से उच्च व निम्न वर्गो में विभक्त रहा है। उच्चवर्ग जहाँ मर्यादा और नैतिकता का दम्भ भरता है, वहीं निम्नवर्ग में मर्यादा और नैतिकता की सीमाएँ नितान्त इसके विपरीत हैं। जिस प्रकार उच्चवर्ग में स्त्री के एक बार विधवा हो जाने पर उसके पुनर्विवाह को स्वीकार नहीं किया जाता उसी प्रकार निम्नवर्ग में स्त्री का अकेला रहना स्वीकार्य नहीं, चाहे उसकी इच्छा हो या न हो।

महाकवि कालिदास का आशय है कि समाधि ही सृजन की प्रक्रिया को साधती है, कवि सृजन में पूर्ण तल्लीन रहता है, उसे किसी प्रकार की सुध–बुध नहीं रहती। वह सारी झंझटों से, सारे झंझावातों से एकदम मुक्त रहता है। वहां बस कवि होता है और उसकी कविता। जब तक समाधि है तब तक तो सृजन कार्य उत्कृष्ट रूप से चलता रहेगा लेकिन जहाँ समाधि टूटी वहीं सृजन का कार्य इस तरह से धरा का धरा रह जायेगा, जैसे सौ किलोमीटर प्रति घंटे की गति से चलने वाली किसी गाड़ी का टायर फट गया हो। अतः महाकवि कालिदास के अनुसार काव्य सिसृक्षण में समाधि की अवस्था या चित्त की एकाग्रता अत्यन्त आवश्यक है। जब तक कलाकार रचना–प्रक्रिया में अपनी विषयवस्तु के साथ पूरी तरह से तल्लीन नहीं होगा, तब तक उसकी काव्य–कला या कोई भी कला पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकती।

महाकवि द्वारा विवेचित इस समाधिस्थ चित्त की अवस्था का अनुसरण उनके बाद भी होता रहा है। प्राचीन पौरस्त्य काव्यशास्त्रीयों जैसे वामन ने **''चत्तैकाग्यमवधानम्''**[8] के माध्यम से, रूद्रट ने **''मनसि सदा सुसमाधिनि''**[9], आनन्दवर्धन ने **''रस समाहित''**[10], महिमभट्ट ने **''चिन्तास्तिमित चेतसः''**[11], वाग्भट ने **''मनः प्रसत्ति''**[12] और पं राज जगन्नाथ ने **''कवेरालोचनं समाधिः''**[13;14] कहकर चित्त की एकतानता को सृजन–प्रक्रिया में अनिवार्य माना है।

स्पष्ट है कि समाधि की अवस्था कला सृजन के लिए अनिवार्य शर्त है। जिसका कालिदास के बाद भी विद्वानों ने अनुसरण किया है। शिथिल समाधि होते ही कला में दोष आ जाता है।

महाकवि कालिदास ने काव्य सृजन में वाणी और अर्थ की आवश्यकता का संकेत करते हुए उन्हें शिव–पार्वती के समान सम्पृक्त बताया है–

''वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ बन्दे पार्वती परमेश्वरौ।।''[15]

जैसे वाणी और अर्थ अलग होते हुए भी एक ही कहलाते हैं, वैसे ही पार्वती और शिव भी कहने को दो रूप हैं, परन्तु वस्तुतः हैं वे एक ही। अतः वाणी और अर्थ को ठीक से समझने और उचित उपयोग करने के लिए संसार के माता–पिता पार्वती और शिव को प्रणाम करता हूं, जो शब्द और अर्थ के समान एक रूप हैं।

वेदों में जिस **'वाक्'**[16] तत्त्व की उपासना की गई है, उसी का अनुसरण कालिदास ने वाणी और अर्थ की उपासना करके किया है क्योंकि यही अभिव्यक्ति का माध्यम है तथा यही कवि के अन्तर्मन के सूक्ष्म स्तर से लेकर अभिव्यक्ति के स्थूल स्तर तक विद्यमान होता है। कवि अपनी रचना–प्रक्रिया में अपने भावों को वाणी के माध्यम से ही तो अभिव्यक्त करता है। यह वाणी काव्य रचना–प्रक्रिया का केन्द्रिय बिन्दु है। कवि के अंदर भी अर्थमय वाणी है और बाहर अभिव्यक्ति के स्तर पर भी वह विद्यमान है। वाणी चार प्रकार की होती है–परा, पश्यंती, मध्यमा और वैखरी। परा, पश्यंती, मध्यमा वाणी के सूक्ष्म स्तर हैं, और वैखरी स्थूल। परा, पश्यंती और मध्यमा के माध्यम से कवि भावानुभूति करता है और वैखरी कवि की वह वाणी होती है, जिसके माध्यम से कवि भावाभिव्यक्ति करता है, अर्थात् जो कविता के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होती है। अतः हम कह सकते हैं कि काव्य सृजन–प्रक्रिया दो स्तरों पर पूर्ण होती है–एक सूक्ष्म और दूसरा स्थूल।

सृजन का पहला स्तर अनुभूति का सूक्ष्म स्तर, जिसमें रचनाकार बाह्य जगत् से प्रभाव, अनुभूति और प्रेरणा ग्रहण करता है, तत्पश्चात् वह दर्शना शक्ति के माध्यम से इन हृदय द्वारा ग्रहण किए गए भावों का दर्शन करता है। सृजन के दूसरे स्तर पर कवि अभिव्यक्ति के दौर से गुजरता है, जिसे हम वर्णन का स्थूल स्तर कह सकते हैं। इस स्तर पर सर्जक अपनी वर्णना शक्ति के द्वारा विविध भाषायी

उपकरणों के माध्यम से काव्याभिव्यक्ति करता है। वह अपनी रचना को कल्पनात्मक स्वरूप प्रदान करता है। अपने सूक्ष्म भावों का वाणी के माध्यम से भौतिक रूपांतरण अथवा मूर्तिकरण करता है।

महाकवि ने काव्य रचना–प्रक्रिया के स्थूल स्तर की चर्चा करते हुए यह भी व्यक्त किया है कि कवि जब कविता की अभिव्यक्ति वाणी द्वारा कर देता है या उसे लिखित रूप दे देता है, तब भी उसकी सृजन–प्रक्रिया जब तक समाप्त नहीं होती, तब तक वह परिमार्जन या परशुद्धीकरण अथवा सौन्दर्यीकरण के दौर से नहीं गुजरता। कालिदास ने दुष्यन्त के उद्धरण के माध्यम से स्पष्ट किया है– ''राजा दुष्यन्त को शकुंतला के चित्रा को बनाने के बाद भी संतुष्टि नहीं है और उसे रेखाओं द्वारा सजाने का प्रयत्न करता है और कहता है कि चित्रा में अभी और अलंकरण की आवश्यकता है।''[17] यह बिल्कुल साफ है कि कवि या कलाकार की सर्जना के बाद भी सृजन का एक स्तर तब तक चलता रहता है जब तक कवि कविता को मनोनुकूल रूप नहीं दे देता, उसमें सौंदर्य नहीं ला देता। रचनाकार रचना हो जाने के बाद भी संतुष्ट नहीं होता। वह उसे सुन्दर बनाने के लिए जिस प्रक्रिया से गुजरता है हम उसे लिखित का पुनर्लेखन या परशुद्धीकरण अथवा परिमार्जन भी कह सकते हैं।

नवीन भारतीय समाज पितृसत्तात्मक समाज होने के कारण नारियों **(शकुंतला)** को दोयम दर्जे का स्थान दिया जाता है जबकि पुरुषों को प्रथम दर्जे का, जिसके कारण हमारे समाज की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक आदि मूल्यों में गिरावट आई है। अब प्रश्न यह उठता है कि जब कानून के सामने स्त्री व पुरुष दोनों को समान अधिकार व एक समान समझा जाता है फिर समाज में असमानता क्यों?

निष्कर्ष

हम महाकवि कालिदास की दृष्टि में काव्य सृजन–प्रक्रिया को दो स्तरों में बांट सकते हैं– पहला स्तर वह है जब कवि लौकिक या सांसारिक जगत् के तत्त्वों, विचारों, संस्कारों व परम्पराओं पर आधारित अपने आन्तरिक जगत् का निर्माण करता है और दूसरे स्तर पर कवि इसी जगत को शब्द और अर्थ की नई वेशभूषा में वाणी के द्वारा रूपायित कर देता है। वाणी इस प्रक्रिया का केंन्द्रिय बिन्दु है। साथ ही समाधि की अवस्था या चित्त की एकाग्रता भी रचना–प्रक्रिया के लिए अनिवार्य है। इस अवस्था में आकर ही सृजन का आदि और अंत दोनों होता है। सर्जना के बाद उसे और सुन्दर रूप प्रदान किया जाता है। कविता की इस सम्पूर्ण रचना–प्रक्रिया में कवि बाह्य का आभ्यन्तरीकरण और आभ्यंतर का बाह्यीकरण करता है।

हमारा देश स्वतंत्रा हुआ। आजादी से पहले जो स्त्री और दलित के अधिकारों की लड़ाई लड़ी जा रही थी, वह बाद में और तीव्र गति से स्त्री–विमर्श व दलित–विमर्श के रूप में उभरकर सामने आयी। हमारे देश को आज़ाद हुए सत्तर वर्ष हो रहे हैं लेकिन आज भी महाकवि कालिदास की नारी–समाज **(शकुंतला)** की दशा या स्थिति वही है जो पहले थी। आधुनिक युग में भी औरत को दबाया जाता है

और उसकी स्वतन्त्राता पर पाबन्दी लगायी जाती है। आधुनिक नारी केवल घर की चारदीवारी में नहीं रहना चाहती बल्कि अपनी पहचान बनाने के लिए हर क्षेत्रा में नौकरी करती है।

संदर्भ–

1. डॉ. कृष्णलाल, वैदिक संहिताओं की विविध विधाएं, प्र. सं. 1993, जे. पी. पब्लिशिंग हाउस, नंदनगरी, दिल्ली, पृ. 263

2. ब्रह्मानंद तिवारी, कालिदास ग्रंथावली, सं. 2005, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 371

3. डॉ. सुलखचन्द्र शर्मा, साधारणीकरण और समानान्तर चिंतन, प्र. सं. 1984, देववाणी परिषद, नई दिल्ली, पृ. 52

4. योगेन्द्र प्रताप सिंह, भारतीय काव्यशास्त्रा, तृतीय संस्करण 2004, लोकभारती प्रकाशन 15–ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद–1, पृ. 263

5. डॉ. नगेन्द्र, भारतीय सौंदर्यशास्त्रा की भूमिका, द्वितीय सं. 1975, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ. 125

6. छान्दोग्योपनिषद, सं. संवत् 2061, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. 681

7. ब्रह्मानंद तिवारी, कालिदास ग्रंथावली, पृ. 587

8. आचार्य वामन (व्याख्याकार डॉ. बेचैन झा), काव्यालंकारसूत्राणि, प्र. सं. संवत् 2028 वि., चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, पृ. 36

9. आचार्य रूद्रट (सं. डॉ. सत्यदेव चौधरी), काव्यालंकार, सं. 1965, वासुदेव प्रकाशन, दिल्ली, पृ.

10. आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी, आनन्दवर्धन, प्रथम संस्करण 1972, मध्य–प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, पृ. 425

11. डॉ. ब्रजमोहन चतुर्वेदी, महिमभट्ट, प्रथम संस्करण 1968, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ. 62

12. रेखा जोशी, आचार्य वाग्भट कृत वाग्भटालंकार, प्र. सं. 1969, पब्लिकेशन स्कीम, मिश्र राजाजी का रास्ता, जयपुर, पृ. 48

13. आचार्य दण्डी (व्या. श्री रामचन्द्र मिश्र), काव्यादर्श, सं. 1958, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पृ. 67

14. आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी, सहृदय और साधारणीकरण, प्र. सं. 1984, हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद, पृ. 38–39

15. ब्रह्मानंद तिवारी, कालिदास ग्रंथावली, पृ. 3

16. शिवनाथ अहिताग्नि, ऋग्वेदिक संहिता, द्वितीय सं. 1991, नाग प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली–7, मं. 10, सू. 114, मं. 8

17. ब्रह्मानंद तिवारी, कालिदास ग्रंथावली, पृ. 371